मानव जीवन में
दुःख, कारण और उपचार

प्रथम संस्करण २९ मार्च २०१४, २००० प्रतियाँ

© श्रीअरविन्द एवं श्रीमाँ के समस्त लेखन एवं छायाचित्र के प्रकाशनाधिकार श्रीअरविन्द आश्रम, पुदुच्चेरी द्वारा सुरक्षित ।

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी राजस्थान, राज्य समिति, जयपुर
मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पुदुच्चेरी
मूल्य : २५ रु.

Manav Jeevan main Dukh, Karan Aur Upchar (Hindi) –
a compilation from the writings of
the Mother and Sri Aurobindo.
Published by : Sri Aurobindo Society,
Rajasthan State Committee, Jaipur.
Printed at : Sri Aurobindo Ashram Press, Puducherry.
Printed in India.

Website: www.aurosociety.org
Email: sasrajasthan@aurosociety.org

विषय-सूची

1. श्रीमाँ की प्रार्थना ... 3
2. कष्ट क्यों है ? ... 4
3. रोग असन्तुलन है ... 7
4. दुख-कष्ट का रहस्य ... 8
5. भय और रोग ... 11
6. कष्ट का उपचार कैसे किया जाये ... 11
7. विश्वास और सुझाव ... 13
8. कल्पना की शक्ति ... 15
9. रोग पर विजय का संकल्प ... 18
10. इच्छाओं पर नियन्त्रण ... 18
11. केवल कृपा रोग-मुक्त करती है ... 19
12. आप का संकल्प पूरा हो ... 19
13. यही रोग-मुक्ति है ... 20
14. रोग-मुक्ति की आध्यात्मिक विधि ... 20
15. ग्रहणशीलता ... 22
16. विरोधी शक्तियाँ ... 23
17. प्रहारों से हमें क्या सीखना है ... 24
18. अन्य कारण ... 28
19. रोग अवरोधक शक्ति में ह्रास ... 29
20. कष्ट कैसे सहन करें ... 30
21. पीड़ा ... 32

मानव जीवन में
दुःख, कारण और उपचार

श्रीमाँ

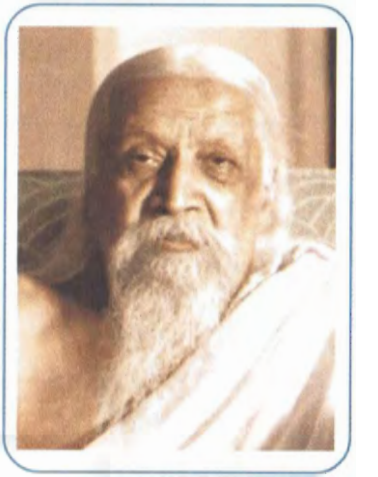

श्रीअरविन्द

श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की रचनाओं से संकलित

प्रार्थना

१४ जनवरी १९१७

"ऐसी कृपा कर कि जो लोग दुःखी हैं वे सब सुखी हो जायें, कृपा कर कि दुष्ट अच्छे बन जायें और रोगी स्वस्थ हो जायें!" इस भांति इस यन्त्र द्वारा अभिव्यक्त होने वाले तेरे दिव्य प्रेम के बारे में मेरे अन्दर इस अभीप्सा ने रूप लिया। यह एक निवेदन की तरह था, एक ऐसा निवेदन जैसा कोई बच्चा अपने पिता से इस विश्वास के साथ करता है कि वह स्वीकृत हो जायेगा। क्योंकि जब मैंने मांग की तो मेरे अन्दर विश्वास थाः मुझे लगा कि यह बहुत सरल और सहज है; मैंने अपने अन्दर आसानी से अनुभव किया कि यह कैसे सम्भव है। आनन्द से आनन्द की ओर, सौन्दर्य से सौन्दर्य की ओर बढ़ना, क्या यह हमेशा दुःख सहन करने और अनिच्छा के साथ अज्ञानमय संघर्ष में से गुजरने की अपेक्षा ज्यादा स्वाभाविक और फलप्रद नहीं है? अगर तू हृदय को अपने दिव्य स्पर्श से खुल कर खिलने दे तो यह रूपान्तर सरल है और अपने-आप आ जाता है।

हे प्रभो, क्या तू अपनी दया के प्रतीक-स्वरूप यह वरदान न देगा?

एक बच्चे के विश्वास के साथ, आज शाम को मेरा हृदय तुझसे अनुनय-विनय कर रहा है।

—श्रीमाँ

प्रार्थना और ध्यान पृ. २०९

कष्ट क्यों है?

बहुत समय से, अभी हाल ही में, यानी, कई दिनों से लगातार एक बहुत तीक्ष्ण, बहुत तीव्र और बहुत स्पष्ट बोध हो रहा है कि 'शक्ति' की क्रिया ही बाह्य रूप में तथाकथित "दुःख-कष्ट" के रूप में अनूदित होती है, क्योंकि यही एकमात्र स्पन्दन है जो जड़-द्रव्य को उसके तमस् में से बाहर खींच सकता है।

परम 'शान्ति' और परम 'अचञ्चलता' ही विकृत और विरूपित होकर निश्चेष्टता, जड़ता और "तमस्" बन जाती है, और ठीक इसी कारण कि यह सच्ची 'शान्ति' और 'अचञ्चलता' का ही विरूपण था, इसे बदलने की जरूरत न थी! इस "तमस्" में से निकल आने के लिए जागृति के या यूं कहें, पुनर्जागरण के कुछ स्पन्दनों की जरूरत थी। उसके लिए सीधा "तमस्" में से शान्ति में आना सम्भव न था इसलिए किसी ऐसी चीज की जरूरत थी जो "तमस्" को झकझोर दे, और इसी चीज ने बाहरी तौर पर कष्ट और पीड़ा का रूप ले लिया।

मैं यहां शारीरिक कष्ट की बात कह रही हूं क्योंकि और सब कष्ट —प्राणिक, मानसिक और संवेगात्मक कष्ट—मन की गलत

आनन्द के साधन

सभी रोग स्वास्थ्य के कुछ नये आनन्द के साधन होते हैं । सभी अशुभ और कष्ट कुछ अधिक आनन्द और शुभ के लिए प्रकृति की सामंजस्य बैठाने की क्रियाएं हैं । समस्त मृत्यु विस्तृततम अमरता की ओर उद्घाटन है । क्यों तथा कैसे यह वैसा हो, यह भगवान का रहस्य है जिसे अहंकार से मुक्त आत्मा समझ सकती है ।

— श्रीअरविन्द :
(विचार और सूत्र : १३५)

आत्मा किसी भी प्रकार की पीड़ा से कभी नहीं प्रभावित होती । चैत्य इसे स्थिर भाव से स्वीकार करता है और आवश्यक क्रिया के लिए प्रभु को सौंप देता है ।

Letters on Yoga p. 1580 **— श्रीअरविन्द**

क्रिया के कारण होते हैं, और इन्हें... एक साथ मिथ्यात्व में गिना जा सकता है। बस। लेकिन शारीरिक कष्ट से मुझे ऐसा लगता है मानों किसी बच्चे को यन्त्रणा दी जा रही हो, क्योंकि यहां, भौतिक-द्रव्य में, मिथ्यात्व अज्ञान बन गया है, यानी, इसमें कोई दुर्भावना नहीं है—भौतिक-द्रव्य में कोई दुर्भावना नहीं है। सब कुछ जड़ता और अज्ञान है : सत्य के बारे में पूरा-पूरा अज्ञान, मूल स्रोत के बारे में अज्ञान, सम्भावना के बारे में अज्ञान, यहां तक कि इस विषय में भी अज्ञान कि शारीरिक पीड़ा न पाने के लिए क्या करना चाहिये। यह अज्ञान कोषाणुओं में हर जगह है और केवल अनुभूति —वह अनुभूति जो प्राथमिक चेतना में दुःख-कष्ट के रूप में अनूदित होती है—ही उसे जगा सकती है, जानने और उपचार करने की आवश्यकता को सामने ला सकती है और अपने-आपका रूपान्तर करने के लिए अभीप्सा पैदा कर सकती है।

अदन वाटिका से बाहर

भगवान हमें हरेक अदन वाटिका से इसलिए बाहर निकाल देता है ताकि हम रेगिस्तान से होते हुए एक अधिक दिव्य बैकुण्ठ में जाने के लिए बाध्य हों । यदि तुम्हें आश्चर्य लगता हो कि मरुभूमि की दुखद यात्रा क्यों जरूरी है, तब तुम्हें तुम्हारे मन ने मूर्ख बना रखा है और तुमने अपनी आत्मा और इसकी मन्द इच्छाओं तथा गुप्त आनन्दों का अध्ययन नहीं किया है ।

विचार और सूत्र : ५२२ — श्रीअरविन्द

यह एक निश्चिति बन गयी है, क्योंकि सभी कोषाणुओं में अभीप्सा उत्पन्न हो गयी है और वह ज्यादा-से-ज्यादा तीव्र होती जा रही है और उसे प्रतिरोध पर आश्चर्य होता है। लेकिन देखा गया है कि जब कभी क्रिया में कोई भूल हो जाती है (अर्थात्, सुनम्य, सहज, स्वाभाविक होने की जगह क्रिया कष्टसाध्य प्रयास बन जाती है, किसी ऐसी चीज के विरुद्ध संघर्ष बन जाती है जो दुर्भावना का रूप ले लेती है, परन्तु सचमुच वह एक ऐसी चुप्पी

अच्छा स्वास्थ्य आन्तरिक सामंजस्य की बाह्य अभिव्यक्ति है । हमें इस पर गर्व करना चाहिये ।

CWM Vol.15, p.136 — श्रीमाँ

होती है जो समझ नहीं पाती), उस समय अभीप्सा और पुकार की तीव्रता दसगुनी बढ़ जाती है और वह निरन्तर चलती रहती है।

लेकिन उस तीव्रता की अवस्था में रहना कठिन होता है; सामान्यतः हर चीज, मैं तन्द्रा तो नहीं कह सकती, हां, शिथिलता में जा गिरती है। तुम चीजों को आसान मान बैठते हो; केवल जब आन्तरिक अव्यवस्था कष्टदायक हो उठती है तभी तीव्रता बढ़ती और निरन्तर हो जाती है। घण्टों, घण्टों तक, बिना किसी ढील के, पुकार और अभीप्सा, भगवान् के साथ एक होने का, भगवान् बन जाने का संकल्प अपने उच्चतम रूप में बना रहता है। क्यों? क्योंकि यह वह चीज थी जिसे बाह्य रूप से शारीरिक गड़बड़ या पीड़ा कहते हैं। अन्यथा, जब कोई पीड़ा नहीं रहती तो समय-समय पर आदमी ऊंचा उठता है, फिर उसके बाद ढील में जा गिरता है, फिर एक बार ऊपर उठता है और फिर से... इसका अन्त नहीं आता। यह हमेशा चलता रहता है। अगर हम चाहते हैं कि चीजें तेजी से चलें (हमारे जीवन की लय के साथ-साथ नहीं, बल्कि तेजी से चलें), तो चाबुक की मार जरूरी है। मुझे इसके बारे में विश्वास है, क्योंकि जैसे ही तुम अपनी आन्तरिक सत्ता में होते हो तुम इसे (अपने प्रति) तिरस्कार की दृष्टि से देखते हो।

लेकिन फिर, अचानक भागवत प्रेम की सच्ची करुणा आती है और व्यक्ति इन सब चीजों को देखता है जो इतनी भयंकर, इतनी असामान्य, इतनी बेतुकी दिखती हैं, यह महान् पीड़ा जो सभी सत्ताओं पर, सभी वस्तुओं पर छायी हुई है... तब इस भौतिक सत्ता में शमन के लिए, उपचार के लिए, इस चीज को हटाने के लिए अभीप्सा पैदा होती है। प्रेम के मूल रूप में कुछ ऐसी चीज है जो अनवरत रूप से भागवत कृपा के हस्तक्षेप के रूप में अनूदित होती है, जो सब जगह शक्ति, मधुरता, प्रशमन के स्पन्दन जैसी चीज बन कर फैली है। लेकिन प्रदीप्त चेतना उसे अमुक बिन्दुओं की ओर भेज सकती या उन पर केन्द्रित कर सकती है। और मैंने देखा कि यहां, हां, यहीं मनुष्य अपने विचार का सच्चा उपयोग कर सकता है : विचार को जहां कहीं जरूरत हो, एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए, एक प्रकार की प्रणाली का काम दे सकता है। यह शक्ति, मधुरता का यह स्पन्दन सारे जगत् पर अचल

तुम्हारे रोग ने आन्तरिक परिवर्तन की आवश्यकता के लिए तुम्हारी आँखें खोलने का अवसर दिया । तुम्हें इसका लाभ उठाकर प्रगति करनी चाहिये ।

CWM Vol.15, p.139 **— श्रीमाँ**

रूप में छाया हुआ है, वह ग्रहण किये जाने के लिए दबाव डालता है। लेकिन यह निर्वैयक्तिक क्रिया है। विचार—प्रदीप्त विचार, समर्पित विचार, केवल एक यन्त्र के रूप में विचार जो चीजों को आरम्भ करने की और कोशिश नहीं करता, जो एक उच्चतर चेतना द्वारा परिचालित होने से ही सन्तुष्ट है — विचार एक माध्यम के रूप में काम करता है और इस निर्वैयक्तिक शक्ति के साथ सम्पर्क स्थापित करने, नाता जोड़ने और जहां कहीं जरूरत हो वहां निश्चित बिन्दुओं पर क्रिया करने-योग्य बनाता है।

श्री मातृवाणी ख.११, पृ.३७-३९ — श्रीमाँ

रोग असन्तुलन है

वास्तव में रोग केवल एक असन्तुलन है । यदि तुम एक अन्य सन्तुलन स्थापित कर सको तो यह असन्तुलन समाप्त हो जाता है । हर रोग, हमेशा, हर हालत में डॉक्टर के यह कहने के बावजूद कि यह रोगाणु के कारण है, सत्ता में एक असन्तुलन होता है — अनेक कार्यकलापों के बीच असन्तुलन, शक्तियों के बीच असन्तुलन ।

इसका अर्थ यह नहीं कि रोगाणु नहीं होते । वे होते हैं तथा ये बहुत तरह के होते हैं जिनकी जानकारी अभी हमें नहीं है । किन्तु तुम उनके कारण बीमार नहीं पड़ते, क्योंकि वे तो हमेशा ही रहते हैं । ऐसा होता है कि वे हमेशा वहाँ रहते हैं और बहुत दिनों तक तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ते । और तब अचानक एक दिन उनमें से एक तुम्हें पकड़ लेता है और तुम्हें बीमार बना देता है — क्यों ? यह इसलिए कि प्रतिरोध की शक्ति पहले की तरह नहीं रहती, क्योंकि किसी अंग में असन्तुलन आ गया, उसका क्रिया-कलाप सामान्य नहीं रहा । किन्तु, यदि आन्तरिक शक्ति द्वारा तुम सन्तुलन पुनर्स्थापित

शरीर को पूरी शक्ति के साथ रोग को वैसे ही अस्वीकार करना चाहिये जैसे हमलोग मिथ्यात्व को मन में अस्वीकार करते हैं ।

CWM Vol.15, p. 147 **— श्रीमाँ**

कर सको, तब कोई कठिनाई नहीं रहती । असन्तुलन गायब हो जाता है । लोगों को रोगमुक्त करने का कोई अन्य उपाय नहीं है । केवल असन्तुलन को देखने और सन्तुलन को फिर से स्थापित कर लेने से ही कोई अपने को रोगमुक्त कर सकता है । केवल तुम दो प्रकार के लोगों से मिलते हो । कुछ लोग अपने असन्तुलन को पकड़े रहते हैं, उससे चिपके रहते हैं, उसे छोड़ना नहीं चाहते । तब तुम कितना भी प्रयास कर लो, तुम उनमें सन्तुलन पुनर्स्थापित भी कर दो, फिर भी दूसरे ही मिनट एक बार पुनः असन्तुलन में जा पड़ते हैं, क्योंकि वे उसे प्यार करते हैं । वे कहते हैं, "ओह नो, मैं बीमार नहीं पड़ना चाहता", किन्तु उनके अन्दर कुछ है जो किसी असन्तुलन को जोर से पकड़े रहता है । कुछ दूसरे लोग होते हैं जो सच्चाई के साथ सन्तुलन से प्यार करते हैं और तुम सीधे उन्हें सन्तुलन फिर से प्राप्त करने की शक्ति दे देते हो । सन्तुलन पुनर्स्थापित हो जाता है और कुछ ही मिनटों में वे रोगमुक्त हो जाते हैं । उनका ज्ञान या उनकी शक्ति सुव्यवस्था लाने के लिए पर्याप्त नहीं होती – असन्तुलन अव्यवस्था है । किन्तु यदि तुम हस्तक्षेप करो यदि तुम्हें इसका ज्ञान है और सन्तुलन पुनर्स्थापित कर दो, स्वभावतः रोग गायब हो जायेगा । जो तुम्हें ऐसा करने देते हैं वे रोगमुक्त हो जाते हैं । केवल वे जो ऐसा करने नहीं देते वे रोगमुक्त नहीं होते । यह स्पष्ट है, वे तुम्हें हस्तक्षेप करने नहीं देते । वे रोग से चिपके रहते हैं ।

CWM Vol.5, p.121-22 – श्रीमाँ

दुःख-कष्ट का रहस्य

बिलकुल स्वाभाविक रूप से हम अपने-आपसे पूछते हैं कि वह कौन-सा रहस्य है जहां पीड़ा हमें ले जाती है। एक उथली और अपूर्ण दृष्टि से देखने पर व्यक्ति यह विश्वास कर सकता है कि यह पीड़ा ही है जिसे अन्तरात्मा खोज रही है। पर बात ऐसी बिलकुल नहीं है। क्योंकि अन्तरात्मा का अपना

भोजन के लालच पर विजय अच्छे स्वास्थ्य का वादा है ।

CWM Vol.15, p. 148 — श्रीमाँ

निज स्वभाव है स्थिर, अपरिवर्नशील, निरपेक्ष और परमाह्लादकारी दिव्य आनन्द। परन्तु यह सच है कि यदि व्यक्ति कष्ट का साहस, सहिष्णुता और भागवत कृपा में अडिग विश्वास के साथ सामना कर सके और जब कभी कष्ट आये तो उससे बचते फिरने के स्थान पर इस संकल्प और इस अभीप्सा के साथ उसे अंगीकार करे कि इसमें से पार होना और उस ज्योतिर्मय सत्य एवं अपरिवर्ती आनन्द को खोज निकालना है जो सभी वस्तुओं के अन्तस्तल में विद्यमान है तो पीड़ा-द्वार इच्छा-तुष्टि या तृप्ति की अपेक्षा अधिक सीधा और अधिक निकटस्थ द्वार होता है।

मैं ऐन्द्रिय सुख के बारे में नहीं कह रही हूं क्योंकि वह तो निरन्तर और लगभग पूरी तरह इस अगाध दिव्य आनन्द की ओर से पीठ फेरे रहता है। ऐन्द्रिय सुख धोखा देने वाला और विकृत छद्मरूप है जो हमें अपने लक्ष्य से भटका कर दूर ले जाता है और यदि हमारे अन्दर सत्य को पाने की आतुरता है तो निश्चय ही हमें इसकी खोज नहीं करनी चाहिये। यह सुख हमें सारहीन बना देता है, हमें ठगता और भटकाता है। पीड़ा हमें एकाग्रचित्त होने के लिए विवश कर देती है ताकि हम उस कुचलने वाली चीज को सहने और उसका सामना करने में समर्थ बन सकें। इस प्रकार वह हमें गभीरतर सत्य की ओर वापस ले जाती है। **यदि व्यक्ति सबल हो तो दुःख में ही सबसे आसानी से सच्ची शक्ति प्राप्त करता है। दुःख में पड़ कर ही फिर से सच्चे श्रद्धा-विश्वास को प्राप्त करना सबसे आसान होता है, —किसी ऐसी चीज में विश्वास जो परे है, ऊपर है, सब दुःखों से परे है।**

जब व्यक्ति आमोद-प्रमोद में भूला रहता है, जब वह वस्तुओं को उसी रूप में लेता है जिस रूप में वे आती हैं और गम्भीर होकर जीवन पर सीधी दृष्टि डालने से बचना चाहता है, एक शब्द में, **जब वह भूल जाना चाहता है, यह भूल जाना चाहता है कि कोई समस्या है जिसका समाधान करना है, कोई चीज है जिसे पाना है और यह कि हमारे अस्तित्व और जीवन का कुछ हेतु है, हम यहां केवल समय बिताने और बिना कुछ सीखे या किये, यहां से चले जाने के लिए नहीं आये हैं, तो**

समस्त अव्यस्था, समस्त दुःख मिथ्यात्व हैं ।
CWM Vol.15, p. 154 **— श्रीमाँ**

सचमुच वह अपना समय बरबाद करता है। और एक ऐसे सुयोग को खो बैठता है—इस सुयोग को मैं अद्वितीय तो नहीं, पर अद्‌भुत कह सकती हूं—जो उसे एक ऐसे अस्तित्व के लिए मिला है जो प्रगति का स्थान है, जो अनन्तता में एक ऐसे क्षण के समान है जब तुम जीवन के रहस्य की खोज कर सकते हो। यह स्थूल-पार्थिव अस्तित्व एक अद्‌भुत सुयोग है, एक सम्भावना है जो तुम्हें जीवन के अस्तित्व-हेतु का पता लगाने, इस गभीरतर सत्य की ओर एक पग आगे बढ़ने के लिए दी गयी है। इसलिए दी गयी है कि तुम उस रहस्य को खोज सको जो तुम्हें दिव्य जीवन के शाश्वत आनन्दोल्लास के सम्पर्क में ला देता है।

मैं तुमसे पहले भी बहुत बार कह चुकी हूं कि दुःख-कष्ट की चाह करना एक अस्वस्थ मनोवृत्ति है, इससे अवश्य बचना चाहिये, पर भुलक्कड़पन के द्वारा, उथली, हल्की क्रियाओं और मनोविनोद द्वारा, उनसे भागना कायरता है। **जब कोई दुःख आता है तो हमें कुछ सिखाने के लिए आता है। जितनी जल्दी हम उसे सीख लेंगे उतनी ही जल्दी उसकी आवश्यकता कम हो जायेगी। और जब हम रहस्य को जान जाते हैं तब फिर दुःखी होना सम्भव नहीं रहता, क्योंकि वह रहस्य हमें दुःख का हेतु, प्रयोजन, भूल और उससे बाहर निकलने का रास्ता दिखा देता है।**

वह रहस्य है अहं से छुटकारा पा लेना, उसकी कैद से निकल आना, अपने-आपको भगवान् के साथ एक कर लेना, उनमें मिला देना, किसी भी चीज को उनसे हमें अलग न करने देना। जब व्यक्ति एक बार इस रहस्य को खोज लेता है और इसे अपनी सत्ता में चरितार्थ कर लेता है तो पीड़ा के अस्तित्व का कोई हेतु नहीं रह जाता और दुःख गायब हो जाता है। यह सत्ता के गहरे भागों में, आत्मा में, आध्यात्मिक चेतना में ही नहीं बल्कि जीवन और शरीर में भी, दुःख से छुटकारा पाने का प्रबलतम उपाय है।

श्री मातृवाणी ख.९, पृ.४०-४२ — श्रीमाँ

हमारी अन्तरात्मा एक मात्र सर्वकुशल चिकित्सक है और इसके प्रति शरीर का समर्पण ही एक वास्तविक रामबाण है ।

SABCL 17, p.127 **— श्रीअरविन्द**

भय और रोग

तुम्हें डरना नहीं चाहिये । तुम्हारे अधिकांश कष्ट भय से उत्पन्न होते हैं । वास्तव में नब्बे प्रतिशत रोग शरीर के अवचेतन भय के परिणाम होते हैं । शरीर की साधारण चेतना में शरीर में थोड़ी भी गड़बड़ी होने पर छिपे रूप में यह चिन्ता हो जाती है कि भविष्य में पता नहीं क्या होगा । इस चिन्ता को रोकना होगा । सचमुच यह चिन्ता भागवत कृपा में विश्वास में कमी के कारण होती है । यह इस बात का निर्भूल संकेत है कि हमारा समर्पण पूर्ण नहीं है ।

इस अवचेतन को जीतने का व्यावहारिक तरीका है कि जब भी मन की ऊपरी सतह पर ऐसा भाव आने लगे तब सत्ता के अधिक प्रबुद्ध भाग को शरीर पर यह प्रभाव डालना चाहिये कि भागवत कृपा में पूर्ण विश्वास जरूरी है, यह कृपा निश्चित रूप से हमारे अन्दर तथा सबके अन्दर हमेशा हमारे सर्वोत्तम हित के लिए कार्य कर रही है । इसलिए दृढ़तापूर्वक भागवत संकल्प के प्रति पूर्ण रूप से तथा मुक्त रूप से समर्पित बने रहो ।

शरीर को जानना होगा और उसे पूर्ण रूप से आश्वस्त करना होगा कि उसका सारतत्व दिव्य है और यह कि यदि भागवत कार्य प्रणाली में कोई बाधा न डाली जाये तब हमें कुछ भी नुकसान पहुँचा नहीं सकता । इस प्रक्रिया को तब तक दुहराते रहना चाहिये जब तक भय का बार बार आना रुक न जाये । और तब भी यदि रोग के लक्षण प्रकट होने लगें, तब इसकी शक्ति और अवधि बहुत कम होगी और धीरे-धीरे निश्चित रूप से यह बिलकुल गायब हो जायेगी ।

CWM Vol.15, p.140 — श्रीमाँ

कष्ट का उपचार कैसे किया जाये?

यह निरपेक्ष रूप से कहा जा सकता है कि हर अशुभ हमेशा अपना उपचार अपने साथ लिये रहता है। हम कह सकते हैं कि किसी भी पीड़ा का

पीड़ा वह चाभी है जो शक्ति के द्वार को खोलती है । यह आनन्द धाम की ओर ले जानेवाला राजपथ है ।

SABCL 17: p.141 — श्रीअरविन्द

उपचार पीड़ा के साथ-ही-साथ रहता है। इसलिए जैसा सामान्यतः समझा जाता है, अशुभ को "बेकार" और "मूर्खतापूर्ण" मानने की जगह तुम उस प्रगति और विकास को देखो जिसने इस पीड़ा को जरूरी बना दिया, जो इस पीड़ा का कारण है और उसके अस्तित्व का हेतु है। वाञ्छित परिणाम पर पहुंचो और साथ ही पीड़ा गायब हो जायेगी—यह उनके लिए है जो अपने-आपको खोल सकते हैं और ग्रहण कर सकते हैं। तीन चीजें हैं—प्रगति के साधन के रूप में पीड़ा, प्रगति, और पीड़ा का उपशमन — ये तीनों सहवर्ती और युगपत् हैं, अर्थात्, एक-दूसरे के बाद नहीं आतीं, एक ही समय में, एक साथ रहती हैं।

जब रूपान्तर करने वाली क्रिया पीड़ा उत्पन्न करती है, उस समय यदि जिसे पीड़ा हो रही है उसमें आवश्यक अभीप्सा, उद्घाटन हो तो उसके साथ-ही-साथ उपचार भी आ जाता है और प्रभाव पूरा-पूरा, सम्पूर्ण होता है : रूपान्तर, उसे प्राप्त करने के लिए आवश्यक क्रिया होती है और साथ ही प्रतिरोध द्वारा पैदा किये गये मिथ्या संवेदन का उपचार हो जाता है। पीड़ा का स्थान एक ऐसी चीज ले लेती है... जो धरती पर अज्ञान है, लेकिन वह हर्ष, कल्याण, विश्वास, सुरक्षा से मिलती-जुलती है। यह परम शान्ति में अतिसंवेदन है, और स्पष्ट है कि यही एक चीज है जो चिरस्थायी हो सकती है।

यह विश्लेषण बहुत ही अपूर्ण रूप से उस चीज को प्रकट करता है जिसे हम आनन्द का "सारांश" कह सकते हैं।

मेरा ख्याल है कि यह एक ऐसी चीज है जिसे युग-युगान्तर से, आंशिक रूप में उड़ता हुआ-सा अनुभव किया जा चुका है, लेकिन उसने अभी हाल में ही धरती पर केन्द्रित होना, लगभग ठोस रूप लेना शुरू किया है। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि भौतिक पदार्थ में, उसके कोषाणु-रूप में भय या चिन्ता होती है, लेकिन उसमें नये स्पन्दनों के प्रति एक प्रकार की आशंका होती है और स्वभावतः यह आशंका कोषाणुओं से उनकी ग्रहणशीलता हर लेती है और व्याकुलता का रूप ले लेती है—यह पीड़ा नहीं व्याकुलता होती

पीड़ा अज्ञान का हस्ताक्षर है जो करता है प्रमाणित कि जीवन ने दिया है नकार रहस्यमय प्रभु को ।

SABCL 29: p.453 **— श्रीअरविन्द**

है। लेकिन अगर इस आशंका को व्यर्थ कर देने के लिए, शान्त करने के लिए अभीप्सा हो और सम्पूर्ण समर्पण के लिए संकल्प हो तो सम्पूर्ण समर्पण की क्रिया से इस प्रकार की आशंका लुप्त हो जाती है और परम कल्याण बन जाती है।

...और अब, हम उसी बात पर वापिस आते हैं, जब व्यक्ति इस चेतना के बारे में सचेतन होता है—इस शक्ति, तात्त्विक सद्वस्तु के रूप में इस भागवत करुणा के बारे में सचेतन होता है—और यह देखता है कि वह सचेतन व्यक्ति के द्वारा कैसे कार्य करती है, तो उसे समस्या की चाबी मिल जाती है।

श्री मातृवाणी ख.११, पृ.३९-४० — श्रीमाँ

विश्वास और सुझाव

जो सुझाव रोग पैदा कर देते हैं या भौतिक सत्ता में अस्वास्थ्यकर अवस्थाएं उत्पन्न कर देते हैं वे सामान्य तौर पर अवचेतन से आते हैं — क्योंकि भौतिक सत्ता का बहुत बड़ा भाग, द्रव्यात्मक भाग, अवचेतन होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि इसकी अपनी चेतना धुंधली होती है पर इतनी धुंधली और अपने आप में इस प्रकार बन्द रहती है कि मन को इसकी

दो शर्तें

यदि तुम रोग मुक्त होना चाहते हो तब दो शर्तें हैं । पहला, तुम्हें भय से मुक्त होना होगा, नितान्त निर्भीक, समझते हो न ! और दूसरा, तुम्हें भागवत सुरक्षा में पूर्ण विश्वास रखना होगा । ये दोनों चीजें अनिवार्य हैं ।

CWM Vol.15, p. 141 **— श्रीमाँ**

कष्ट है घन देवों का जो मर्त्य के हृदय में अटूट प्रतिरोध का करता है भंजन ।
SABCL 29: p.443 **— श्रीअरविन्द**

गतिविधि का भान नहीं रहता या यह नहीं जानता कि वहाँ क्या हो रहा है । परन्तु फिर भी यह चेतना ही है और बाहर की शक्तियों के सुझावों को ग्रहण कर सकती है ठीक वैसे ही जैसे मन और प्राण ग्रहण करते हैं । यदि ऐसा न होता तब शक्ति के प्रति इसके उद्घाटन की सम्भावना और शक्ति द्वारा इसके रोग की मुक्ति की सम्भावना नहीं होती, क्योंकि इसमें इस चेतना के बिना यह प्रत्युत्तर नहीं दे पाता । यूरोप तथा अमरीका में अब ऐसे बहुत लोग हैं जो इस तथ्य को स्वीकार करते हैं तथा अपने रोगों की चिकित्सा शरीर को सचेतन मानसिक सुझाव देकर करते हैं । ये सुझाव अवचेतन में रोग के धुंधले गुप्त सुझावों को प्रभावहीन कर देते हैं । फ्रांस में एक प्रसिद्ध डॉक्टर था जो हजारों लोगों को उन्हें अपने शरीर पर आग्रहपूर्वक ऐसे विरोधी सुझाव दिलवा कर रोगमुक्त किया करता था । इससे यह सिद्ध होता है कि रोग का एकदम भौतिक कारण नहीं होता, बल्कि यह शरीर में गुप्त चेतना की अशान्ति के कारण होता है ।

सुझाव से मेरा तात्पर्य केवल विचारों या शब्दों से नहीं है । जब सम्मोहक (हिप्नोटिस्ट) कहता है "सो जाओ", यह एक सुझाव है, किन्तु जब वह कुछ नहीं बोलता किन्तु सुलाने के लिए अपने मौन संकल्प का दबाव डालता है या चेहरे पर हाथ घुमाता है तब वह भी सुझाव ही है ।

जब कोई शक्ति तुम पर प्रभाव डालती है या रोग का कोई स्पन्दन होता है तब शरीर को यही सुझाव देता है । शरीर में एक तरंग उठती है – इसमें एक खास स्पन्दन के साथ । शरीर को स्मरण आता है – "ठण्ढ" या ठण्ढ का स्पन्दन महसूस करने लगता है और खांसने या छींकने लग जाता है या ठण्ड महसूस करने लगता है । तब मन में सुझाव आता है "मैं कमजोर हूँ, मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मुझे जुकाम हो रहा है ।"

सुझाव किसी का अपना विचार या अपनी भावना नहीं होती बल्कि एक ऐसा विचार या भावना है जो बाहर से, दूसरों से, सामान्य वातावरण से या बाहरी प्रकृति से आता है – यदि यह ग्रहण कर लिया जाता है तब यह चिपक जाता है और व्यक्ति की सत्ता पर प्रभाव डालता है और व्यक्ति इसे

अन्ततोगत्वा विश्वास ही रोगमुक्त करता है ।
CWM 15, p.159 **— श्रीमाँ**

अपना विचार या अपनी भावना समझने लगता है । यदि इसे बाहरी सुझाव की तरह समझा जाये तब इससे आसानी से छुटकारा पाया जा सकता है । सन्देह तथा आत्म-अविश्वास तथा अपने बारे में निराशा की भावना ऐसी चीज है जो वातावरण में घूमती रहती है और लोगों में प्रवेश करने की कोशिश करती रहती है तथा लोग इसे ग्रहण भी कर लेते हैं । मैं चाहता हूँ कि तुम इसे स्वीकार न करो, क्योंकि इसकी उपस्थिति से न केवल कष्ट होगा बल्कि स्वास्थ्य लाभ तथा साधना की आन्तरिक गतिविधि की वापसी के मार्ग में बाधा भी आयेगी ।

जहाँ तक दवा का सम्बन्ध है, यह कभी-कभी आवश्यक हो जाता है । यदि तुम शक्ति के द्वारा अपने आप को रोगमुक्त कर सकते हो जैसा कि तुमने प्रायः किया है, यह सर्वश्रेष्ठ है – किन्तु किसी कारणवश शरीर शक्ति को प्रत्युत्तर नहीं देता या शक्ति का प्रभाव ग्रहण नहीं करता (किसी शंका, अवसाद या निरुत्साह या रोग के विरुद्ध प्रतिक्रिया की अक्षमता के कारण), तब दवा की चिकित्सा आवश्यक हो जाती है । ऐसा नहीं की शक्ति कार्य करना बन्द कर देती है और सब कुछ दवा पर छोड़ देती है – यह चेतना के माध्यम से प्रभाव या क्रिया करना जारी रखेगी, किन्तु दवा की चिकित्सा की मदद से शरीर में अवरोध पर सीधी क्रिया करेगी । शरीर तब अपनी सामान्य चेतना में भौतिक साधनों के प्रति अधिक तत्परता से प्रत्युत्तर देगा ।

Letters on Yoga pp. 1570-1573 — श्रीअरविन्द

कल्पना की शक्ति

कल्पना रचना की एक शक्ति है । वास्तव में, जिन लोगों में कल्पना शक्ति नहीं होती, वे मानसिक दृष्टिकोण से रचनात्मक नहीं होते । वे अपने विचार को एक ठोस शक्ति प्रदान नहीं कर सकते । कल्पना क्रिया करने का एक बहुत सशक्त साधन है । उदाहरण के लिए, यदि तुम्हें कहीं दर्द है और

कोषाणुओं में शुद्धता कामना पर विजय के द्वारा ही लायी जा सकती है । अच्छे स्वास्थ्य के लिए यह सच्ची अवस्था है ।

CWMCV 14, p.384 — श्रीमाँ

यदि तुम कल्पना करो कि तुम दर्द को गायब कर रहे हो या तुम इसे हटा रहे हो या इसे खत्म कर रहे हो – सब तरह की ऐसी धारणा कर सकते हो – और तुम पूरी तरह सफल हो जाते हो ।

एक महिला की कहानी है जिसके बाल बहुत तेजी से झड़ रहे थे, इतनी तेजी से कि कुछ हफ्तों में गंजा हो जाती । तभी किसी ने उसे कहा, "जब तुम अपने बाल में कंघी करो तब यह कल्पना करो कि बाल बढ़ रहे हैं और ये तेजी से बढ़ने लगेंगे ।" उसने हमेशा कंघी करते समय यह कहना शुरू किया, "ओह ! मेरे बाल बढ़ रहे हैं । ये तेजी से बढ़ेंगे ।... और ऐसा ही हुआ । किन्तु आम तौर पर लोग अपने आप से कहते हैं, "आह, मेरे सारे बाल फिर से झड़ रहे हैं और मैं गंजा बन जाऊँगा । ऐसा ही होने जा रहा है !"

और निस्सन्देह ऐसा ही हो जाता है !

CWM Vol.9, p.380 — श्रीमाँ

कूए एक डाक्टर था । वह मनोवैज्ञानिक तरीके से, आत्म सुझाव के द्वारा चिकित्सा किया करता था । और वह इसे कल्पना की सच्ची कार्यप्रणाली कहा करता था । और जिसे वह कल्पना कहा करता था वह वास्तव में विश्वास था । अतः वह अपने रोगियों का इलाज इस तरह करता था : उन्हें एक प्रकार की काल्पनिक रचना बनानी पड़ती थी जिसमें उन्हें यह सोचना पड़ता था कि वे रोगमुक्त हो गये हैं या रोगमुक्त होने जा रहे हैं और इसे प्रभावकारी बनाने के लिए उन्हें आग्रहपूर्वक इस कल्पना को दुहराते जाना पड़ता था । इसका आश्चर्यजनक परिणाम हुआ । उस डॉक्टर ने बहुतों को रोगमुक्त किया । उसे असफलता भी मिली और सम्भवतः रोगमुक्ति स्थायी नहीं होती थी, यह मैं नहीं जानती । फिर भी, बहरहाल इससे बहुत लोग सोचने के लिए बाध्य हो गये कि इसमें कुछ सच्चाई है और यह महत्वपूर्ण है । और यह कि मन एक रचनात्मक यन्त्र है और यदि कोई यह जाने कि इसे सही तरीके से कैसे उपयोग में लाया जा सकता है तब इसका बहुत अच्छा

वास्तविक रोग भय है । भय को निकाल फेंको और रोग चला जायेगा ।
CWMCV 15, p.152 — श्रीमाँ

परिणाम होता है । उसका कहना था और मैं समझती हूं कि यह सच है, मेरी धारणा भी उससे मिलती है कि लोग गलत ढंग से सोचने में समय नष्ट करते हैं । उनकी मानसिक गतिविधि लगभग हमेशा ही आधी निराशावादी होती है और आधी विनाशकारी भी । वे हमेशा दुखद चीजों के बारे में सोचते और पहले से उनका अनुमान लगाते रहते हैं । वे पर्याप्त कल्पना के साथ सभी प्रकार की विपत्तियों की रचना करते रहते हैं । यदि इन्हें दूसरे ढंग से उपयोग में लाये जायें तो स्वाभावतः विपरीत और अधिक सन्तोषजनक परिणाम होंगे ।

यदि तुम अपना निरीक्षण करो, यदि तुम... कैसे कहा जाये... यदि तुम अपने आपको सोचते समय पकड़ लो – अच्छा, यदि तुम इसे अचानक करो, यदि तुम अपने आपको सोचते समय देखो एकदम अचानक सहज रूप से, अप्रत्याशित, तब तुम देखोगे कि दस में से नौ बार तुम दुखद चीजें सोच रहे हो । यह कभी कभार ही होता है कि तुम सामंजस्यपूर्ण, सुन्दर, रचनात्मक, सुखद चीजों के बारे में सोचते हो जो आशा, प्रकाश तथा आनन्द से पूर्ण हो । तुम इस प्रयोग की कोशिश करो । अचानक रुक जाओ और अपने आपको सोचते हुए देखो, यों ही । अपने विचार के सामने एक स्क्रीन डाल दो अपने आपको सोचते हुए देखो, अचानक । तुम देखोगे कि कम से कम दस में से नौ बार और शायद ज्यादा ही ।... तुम देखोगे कि लगभग हमेशा ही तुम बड़े या छोटे, अधिक या कम विपत्ति का पूर्वानुमान लगाते रहते हो ।

जबकि कूए सलाह देता था... "तुम अपने आप से बार बार कहते रहो : मैं रोगमुक्त हो रहा हूँ । क्रमशः मैं चंगा हो रहा हूँ ।... मैं स्वस्थ और मजबूत हूँ । मैं बिलकुल ठीक ठाक हूँ । मैं यह कर सकता हूँ । मैं वह कर सकता हूँ ।"

CWM Vol..7, pp.3-5 — श्रीमाँ

भगवान की ओर मुड़ो । तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो जायेंगे ।
CWMCV 14, p.266 — श्रीमाँ

रोग पर विजय का संकल्प

अपने अन्दर तुम विजय प्राप्त करने का संकल्प जगाओ । एक मात्र मन का संकल्प ही नहीं बल्कि अपने शरीर के कोषाणुओं में भी संकल्प जगाओ । उसके बिना तुम कुछ भी नहीं कर सकते । तुम सैकड़ों दवाइयाँ ले सकते हो किन्तु वे तुम्हें रोग मुक्त नहीं करेंगी जब तक तुम्हारे अन्दर भौतिक बीमारियों पर विजय प्राप्त करने का संकल्प न हो ।

मैं उस विरोधी शक्ति को नष्ट कर सकती हूँ जिसने तुम्हें अधिकार में कर रखा है । मैं इस क्रिया को हजारों बार दुहरा सकती हूँ । किन्तु हर बार जब भी खाली स्थान मिलेगा कोई न कोई शक्ति उसमें आ घुसेगी । इसलिए मैं कहती हूँ कि विजय प्राप्त करने का संकल्प जगाओ ।

CWM Vol..15, p146 — श्रीमाँ

इच्छाओं पर नियन्त्रण

रोग मुक्त होने के लिए, मेरे बच्चे, न केवल इन अनुचित आदतों को रोकना जरूरी है बल्कि अपने विचार तथा संवेदन में इन सब अस्वास्थ्यकर इच्छाओं से भी मुक्त होना आवश्यक है, क्योंकि इच्छाएं ही अंगों में दाह उत्पन्न करती हैं और उन्हें बीमार कर देती हैं । तुम बेरहमी से हर चीज साफ कर दो किन्तु इसके लिए तुम्हारा संकल्प काफी मजबूत नहीं है । इसलिए मेरे संकल्प का आवाहन करो, सच्चाई के साथ इसे पुकारो और यह तुम्हारी मदद के लिए उपस्थित होगा । तुम ठीक कहते हो कि मेरी मदद से तुम निश्चित ही विजय प्राप्त करोगे । यह सच है किन्तु तुम्हें सच्चाई के साथ इसे चाहना होगा और तुम्हारे अन्दर सभी परिस्थितियों में इसे कार्य करने देना होगा ।

CWM Vol.15, p.147 — श्रीमाँ

रोगमुक्ति की अनिवार्य शर्त है अचंचलता और स्थिरता । अशान्ति और संकीर्णता से रोग की अवधि बढ़ती है ।

CWMCV 15, p.163 — श्रीमाँ

केवल कृपा रोग-मुक्त करती है

मैं रोगों के बारे में केवल यही परामर्श दे सकती हूँ कि शान्ति को नीचे उतारो । शरीर से मन को दूर रखो चाहे जैसे भी हो – चाहे श्रीअरविन्द की पुस्तकें पढ़ो या ध्यान करो । केवल ऐसी स्थिति में ही कृपा कार्य करती है । और केवल कृपा ही रोग से मुक्ति दिलाती है । दवाइयाँ केवल शरीर को विश्वास देती हैं । बस इतना ही ।

CWM Vol.15, p.149 — श्रीमाँ

शान्ति तथा स्थिरता, श्रद्धा तथा समर्पण

ऊपर की शक्ति को अपना कार्य करने के लिए छोड़ देना और शान्त बने रहना तथा एकाग्र होना, हर रोग से मुक्त होने का सुनिश्चित मार्ग है । ऐसा कोई रोग नहीं है जो इसका प्रतिरोध करे यदि इसे उचित रीति से ठीक समय पर और काफी समय तक अचल श्रद्धा तथा दृढ़ संकल्प के साथ किया जाये ।

CWM Vol.15, p.148 **— श्रीमाँ**

"आप का संकल्प पूरा हो"

विचलित होने और संघर्ष करने के बदले करने की सर्वोत्तम चीज है अपने शरीर को सच्ची प्रार्थना के साथ भगवान को समर्पित कर देना, "*आप का संकल्प पूरा हो*" । यदि रोग मुक्ति की कुछ भी सम्भावना है तो इसके लिए यह सर्वोत्तम स्थितियों का निर्माण करेगी । और यदि रोग मुक्ति असम्भव है तब शरीर से बाहर जाने की तथा अशरीरी जीवन की यह सर्वोत्तम तैयारी होगी ।

किसी भी हालत में, पहली अनिवार्य शर्त है भागवत संकल्प के

साधक को शरीर की आवश्यकता की पूर्ति के लिए खाना चाहिये न कि स्वाद को सन्तुष्ट करने के लिए ।

CWMCV 14, p.270 — श्रीमाँ

प्रति एक स्थिर समर्पण ।

प्यार तथा आशीर्वाद के साथ,

CWM Vol.15, p.149 — श्रीमाँ

यही रोग-मुक्ति है

अपने मन को पूरी तरह अपनी कठिनाई से हटा लो, केवल ऊपर से उतरती ज्योति तथा शक्ति पर मन को एकाग्र करो, प्रभु को तुम्हारे शरीर के लिए जो वे चाहते हैं करने दो । उन्हें पूर्ण रूप से अपनी भौतिक सत्ता की पूरी जिम्मेदारी सौंप दो । **यही रोग-मुक्ति है ।**

आशीर्वाद के साथ,

CWMCV 15, p.150 — श्रीमाँ

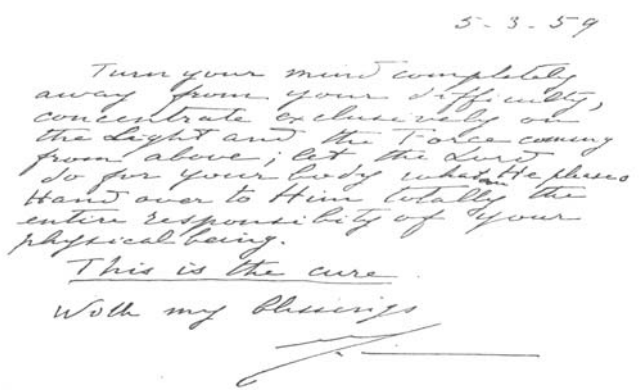

रोग-मुक्ति की आध्यात्मिक विधि

आध्यात्मिक रूप से रोग से मुक्त होने की दो विधियाँ हैं । एक विधि के अनुसार चेतना और सत्य की शक्ति को उस शारीरिक अंग पर केन्द्रित करना पड़ता है जो रोग से प्रभावित है । इस हालत में प्रभाव व्यक्ति की ग्रहणशीलता पर निर्भर करता है । यदि व्यक्ति ग्रहणशील है तब चेतना की

जब तक तुम अपने भोजन पर नियन्त्रण न रखोगे तुम हमेशा बीमार रहोगे ।
CWMCV 15, p.159 — श्रीमाँ

शक्ति के दबाव से प्रभावित अंग में सुव्यवस्था वापस आ जाती है और कष्ट से मुक्ति मिल जाती है । तुमलोगों में से बहुत लोग जानते हैं कि श्रीअरविन्द ने उन्हें कैसे रोगमुक्त किया । यह ऐसा था मानो कोई एक हाथ आकर दर्द को ले गया । यह उतना ही स्पष्ट है ।

दूसरी विधि है : यदि शरीर में ग्रहणशीलता बिलकुल नहीं है या अपर्याप्त है तब उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति के साथ जिसके कारण रोग है आन्तरिक सादृश्य देखा जाता है और उस पर कार्य किया जाता है । किन्तु यदि रोग का कारण हठीला है तब अधिक कुछ नहीं किया जा सकता । मान लो मूल कारण प्राण में है और प्राण बिलकुल अपने को बदलना नहीं चाहता, अपनी स्थिति से चिपका रहना चाहता है तब कोई आशा नहीं की जा सकती । तुम शक्ति का प्रयोग करते हो और सामान्य तौर पर यह रोग को बढ़ा देता है जो प्राण के अवरोध के कारण होता है, जो कुछ भी स्वीकार करना नहीं चाहता । मैं प्राण की बात कर रही हूँ, पर यह मन या कुछ और भी हो सकता है ।

जब क्रिया सीधे शरीर पर की जाती है यानी प्रभावित अंग पर तब सम्भव है कि रोग दूर हो जाये । परन्तु तब कुछ घण्टों या कुछ दिनों के बाद रोग लौट आता है । इसका अर्थ है कि कारण को बदला नहीं गया, वह प्राण में है और अभी भी वहाँ मौजूद है, केवल प्रभाव को दूर किया गया है । किन्तु यदि कारण और प्रभाव दोनों पर एक साथ क्रिया की जाये और कारण पर्याप्त रूप से बदलने के लिए ग्रहणशील है तब व्यक्ति बिलकुल रोगमुक्त हो जाता है ।

CWM Vol.4, p.264 — श्रीमाँ

***प्रश्न* : जब कोई बीमार पड़ जाये तब रोग मुक्त होने के लिए श्रीमाँ से कैसे प्रार्थना करनी चाहिये ?**
***उत्तर* : हे माँ, मुझे रोग-मुक्त करो ।**
CWM Vol. 15, p.152 — श्रीमाँ

रोग-मुक्ति की आध्यात्मिक शक्ति : भागवत प्रभाव की ओर उद्‌घाटन तथा ग्रहणशीलता ।
CWMCV 15, p.168 — श्रीमाँ

ग्रहणशीलता

प्रश्न : शरीर की ग्रहणशीलता को कैसे बढ़ाया जा सकता है ?

उत्तर : यह शरीर के अंग विशेष पर निर्भर करता है । सत्ता के सभी अंगों के लिए पहली शर्त है यथासम्भव शान्त बने रहना । तुम देखोगे कि – तुम्हारी सत्ता के भिन्न भिन्न भागों में जब कुछ आता है और तुम उसे ग्रहण नहीं करते तब इससे संकुचन बन जाता है – कुछ है जो प्राण को, मन को या शरीर को कड़ा बना देता है । यह कड़ापन कष्ट देता है । व्यक्ति मानसिक, प्राणिक या शारीरिक पीड़ा अनुभव करता है । इसलिए पहली चीज है संकल्प द्वारा इस संकुचन को शिथिल करना जिस प्रकार कोई स्नायु या मांसपेशी के ऐंठन को ठीक करता है । तुम्हें इस खिंचाव को ढीला करना सीखना होगा चाहे वह सत्ता के किसी भाग में भी हो ।

इस खिंचाव को शिथिल करने की विधि मन में, प्राण में या शरीर में भिन्न भिन्न हो सकती है, किन्तु नियम एक ही है । यदि तुमने तनाव को ढीला कर दिया है तब सबसे पहले देखोगे कि क्या प्रतिकूल प्रभाव दूर हो गया है । यदि हाँ तो इसका अर्थ है कि अवरोध अल्पकालिक था । यदि दर्द बना हुआ है और यदि ग्रहणशीलता को बढ़ाना जरूरी है जिससे आवश्यक मदद को ग्रहण किया जा सके तब तनाव को शिथिल करने के बाद अपने को विस्तारित करने का प्रयास आरम्भ करना चाहिये जिसमें तुम अनुभव करते हो कि तुम अपने आपको फैला रहे हो । इसकी कई विधियाँ हैं । कुछ लोगों के लिए यह कल्पना करना लाभदायक होता है कि वे अपनी पीठ के नीचे एक पटरी पर पानी में बह रहे हैं । तब वे अपने को फैलाते हैं और तब तक फैलाते रहते हैं जब तक वे पानी का विशाल समूह न बन जायें । अन्य लोग आसमान और सितारों के साथ तदात्म होने का प्रयास करते हैं । वे अपने

रोग-मुक्ति की भौतिक शक्ति व्यक्ति की शुभेच्छा में बड़ी सच्चाई की मांग करती है ।
CWMCV 15, p.168 **— श्रीमाँ**

को फैलाते जाते हैं और अधिक से अधिक आसमान के साथ तदात्म होने का प्रयास करते हैं । कुछ अन्य लोग ऐसे हैं जिन्हें इन प्रतिमानों की जरूरत नहीं पड़ती । वे अपनी चेतना के प्रति सचेतन बन सकते हैं । अपनी चेतना को अधिक से अधिक बढ़ाते जाते हैं जब तक यह असीम न बन जाये । व्यक्ति उसे धरती, यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड के समान विशाल बना सकता है । व्यक्ति जब इतना कर लेता है तब वह सचमुच ग्रहणशील बन जाता है । जैसा कि मैंने कहा है कि यह प्रशिक्षण का प्रश्न है । जो भी हो, तात्कालिक दृष्टिकोण से, जब ऐसा हो और जब यह इतना गंभीर हो कि सिरदर्द होने लगे और यह असहनीय हो जाये तब विधि वही है । तुम्हें खिंचाव पर क्रिया करनी है । क्रिया विचार द्वारा, शान्ति, पूर्ण शान्ति के आह्वान द्वारा की जा सकती है । (शान्ति की अनुभूति से कठिनाई काफी कम हो जाती है) । आह्वान इस प्रकार किया जा सकता है : "शान्ति, शान्ति, शान्ति... प्रशान्ति... अचंचलता" (पीस, पीस, पीस... ट्रांक्विलिटि... काम) । अनेक प्रकार की बेचैनी, सौरचक्र के ऐसे ऐंठन के समान शारीरिक बेचैनी भी – जिससे मिचली और दम घुटने जैसी हालत हो जाती है – इससे गायब हो जाती है । ऐसा स्नायु केन्द्र के प्रभावित होने से होने लगता है । जैसे ही ऐसा कुछ होने लगे जो सौर चक्र को प्रभावित करता हो तो तुम्हें तुरन्त कहना चाहिये, "शान्ति... शान्ति... शान्ति" (काम... काम... काम) और अधिक से अधिक शान्त बने रहो ।
CWM Vol.4, p. 265-67 – श्रीमाँ

विरोधी शक्तियाँ

रोग के आक्रमण निम्न प्रकृति या भागवत विरोधी शक्तियों के आक्रमण होते हैं जो हमारी दुर्बलता, हमारी प्रकृति में कहीं छेद या प्रत्युत्तर का लाभ उठाती हैं । वे अन्य चीजों की तरह ही आती हैं जिन्हें बाहर निकाल फेंकना होता है । वे बाहर से आती हैं । यदि व्यक्ति उन्हें आते हुए अनुभव कर सके और शरीर में प्रवेश करने से पहले शक्ति जुटा कर उन्हें बाहर फेंक देने की

यदि काम को दिलचस्पी के साथ न किया जाये तब थकावट हो जाती है ।
CWMCV 14, p.267 **— श्रीमाँ**

आदत बना ले तब व्यक्ति रोग से मुक्त रह सकता है । यदि आक्रमण अन्दर से आता हुआ प्रतीत हो तब इसका केवल अर्थ है कि अवचेतन में प्रवेश करने से पूर्व उसे पकड़ा नहीं गया । अवचेतन में प्रवेश कर जाने पर इसे लाने वाली शक्ति देर या सबेर से उसे लेकर हमारे शरीर की कार्यप्रणाली पर आक्रमण करती है । जब तुम इसके प्रवेश के तुरन्त बाद इसे अनुभव करते हो यद्यपि यह सीधे शरीर में आ गया — अवचेतन के द्वारा नहीं, फिर भी जब यह बाहर था तुम्हें पता नहीं चला । प्रायः यह ऐसे ही प्रवेश करता है सामने से या अधिकतर अचानक बगल से अपना रंग बदलते हुए सूक्ष्म प्राणिक आवरण के द्वारा जो हमारी सुरक्षा का मुख्य कवच है । किन्तु इसे भौतिक शरीर में प्रवेश करने से पहले आवरण में ही रोका जा सकता है । तब व्यक्ति को उसका कुछ प्रभाव यानी बुखार-सा या जुकाम सा महसूस होने लगता है, किन्तु तब तक रोग का पूरा आक्रमण नहीं होता । यदि उसके पहले ही इसे रोका जा सके या यदि प्राणिक आवरण स्वयं विरोध करे और मजबूत, प्रबल और अभेद्य बना रहे तब रोग नहीं होता । आक्रमण से कोई प्रभाव नहीं पड़ता और उसका कोई चिह्न नहीं रह जाता ।

SABCL vol.24, pp.1564-65 — श्रीअरविन्द

प्रहारों से हमें क्या सीखना है?

यह एक ऐसा अनुभव है जिसे भली-भांति किया जा सकता है। जब ऐसे लोग, जो कुछ भी नहीं जानते, अपने-आपको बहुत कठिन परिस्थितियों में पाते हैं, या किसी ऐसी समस्या में उलझ जाते हैं जिसे हल करना ही चाहिये, या जैसा कि मैंने अभी कहा, किसी ऐसे आवेग में आ जाते हैं जिसे जीतना जरूरी है, या अगर किसी वस्तु ने उन्हें व्याकुल कर दिया है... और उस समय वे अपने-आपको खोया-खोया-सा अनुभव करते हैं; उनकी समझ में नहीं आता कि वे क्या करें—उनका मन, उनका संकल्प, उनके संवेदन, कोई

मनोवैज्ञानिक रोग विचार और भावनाओं के होते हैं जैसे विषाद, विद्रोह, उदासी । भौतिक रोग शरीर के होते हैं ।

CWMCV 16, p.72 — श्रीमाँ

भी सहायता नहीं करते—वे नहीं जानते कि क्या करें, तब यह होता है; उनके अन्दर से एक पुकार-सी उठती है, एक ऐसे के प्रति पुकार जो वह सब कर सकता है जिसे ये नहीं कर सकते, व्यक्ति उस चीज के प्रति अभीप्सा करता है जो वह काम करने में समर्थ है जिसे वह स्वयं नहीं कर सकता।

यही पहली शर्त है। और फिर, अगर तुम्हें इस बात का भान हो जाये कि केवल भागवत 'कृपा' ही यह कर सकती है, कि तुम अपने-आपको जिस परिस्थिति में पाते हो उसमें से केवल 'कृपा' ही तुम्हें उबार सकती है, वही तुम्हें उसमें से निकलने के लिए उपाय बता सकती है और बल दे सकती है, तो स्वभावतः, तुम्हारे अन्दर एक तीव्र अभीप्सा जागेगी—एक ऐसी चेतना जो अपने-आपको उद्घाटन में बदल लेगी। अगर तुम आवाहन करो, अभीप्सा करो और उत्तर पाने की आशा करो, तो तुम बिलकुल स्वाभाविक रूप से अपने-आपको भागवत 'कृपा' की ओर खोलोगे।

दुर्घटना का कारण

दुर्घटनाएं कई कारणों से होती हैं । वास्तव में वे प्रकृति में शक्तियों के बीच संघर्ष के परिणाम होते हैं, उन शक्तियों के बीच जो संवृद्धि और प्रगति की शक्तियाँ हैं और जो विनाश की शक्तियाँ हैं । जब कोई दुर्घटना होती है, ऐसी दुर्घटना जिसका परिणाम स्थायी होता है तब यह हमेशा कम या अधिक विरोधी शक्तियों की, विघटन और अव्यवस्था की शक्तियों की आंशिक विजय का परिणाम होता है ।

CWM Vol. 6, p.1 — **श्रीमाँ**

और बाद में—तुम्हें इसकी ओर बहुत ध्यान देना चाहिये (*माताजी ओठों पर उंगली रखती हैं*)—भागवत 'कृपा' तुम्हें उत्तर देगी, भागवत 'कृपा' तुम्हें

हमारी सत्ता का पूर्ण रूपान्तर हमारा लक्ष्य है । शरीर का रूपान्तर इसका अनिवार्य अंग है । इसके बिना पृथ्वी पर पूर्ण दिव्य जीवन सम्भव नहीं है ।

SABCL vol.16, p.24 — **श्रीअरविन्द**

कष्ट में से उबार लेगी, भागवत 'कृपा' तुम्हें समस्या का समाधान बतलायेगी या तुम्हें अपनी कठिनाई में से निकल आने में सहायता देगी। लेकिन जब तुम कष्ट से छुटकारा पा जाओ और कठिनाई में से निकल आओ, तो यह न भूलो कि भागवत 'कृपा' ने ही तुम्हें उबारा है, यह न सोचो कि यह तुम्हारा अपना काम है। क्योंकि वास्तव में, यह महत्त्वपूर्ण बात है। कठिनाई खत्म होते ही अधिकतर लोग कहते हैं : "आखिर, मैंने अपने-आपको बड़ी अच्छी तरह कठिनाई में से निकाल लिया।"

तो बात यह है। इस तरह तुम दरवाजा बन्द कर देते हो, उस पर ताला जड़ कर चटकनी लगा देते हो, और फिर तुम और कुछ नहीं पा सकते। इस आन्तरिक मूढ़ता को दूर करने, और तुम्हें यह अनुभव कराने के लिए कि तुम कुछ भी नहीं कर सकते, तुम्हें फिर से किसी तीव्र व्यथा की, किसी भयानक कठिनाई की जरूरत होती है। क्योंकि तभी तुम जरा-सा खुलते और लचीले बनते हो जब तुम्हें यह पता लग जाये कि तुम बलहीन हो। लेकिन जब तक तुम यह समझते हो कि जो कुछ तुम करते हो वह तुम्हारे अपने कौशल और अपनी क्षमता पर निर्भर है, तो सचमुच, तुम केवल एक दरवाजा नहीं, एक के बाद एक बहुत-से दरवाजे बन्द कर देते हो, समझे, और उनमें

समता में समाधान

शारीरिक कष्ट हमेशा हमें समता का पाठ पढ़ाने और यह बताने के लिए आते हैं कि हमारे अन्दर कौन सी चीज इतनी शुद्ध और ज्योतिर्मय है जिस पर कष्ट का प्रभाव नहीं पड़ता ।

समता में ही हमें समाधान मिलता है ।

एक महत्वपूर्ण बिन्दु : समता से मतलब भावशून्यता से नहीं है ।

CWM vol.15, p.138 **— श्रीमाँ**

निश्चय ही प्राण की कामनाओं एवं आवेगों या महत्वाकांक्षाओं की अनुचित मांगों की पूर्ति ही शरीर को रोगी बनाती है और इसके कष्ट का कारण बन जाती है ।

CWMCV 9, p.99 **— श्रीमाँ**

चटकनी लगा देते हो। तुम अपने-आपको एक किले में बन्द कर लेते हो, और वहां कोई चीज प्रवेश नहीं कर सकती। यह सबसे बड़ी त्रुटि है : आदमी बहुत जल्दी भूल जाता है। बिलकुल स्वाभाविक रूप में, वह अपनी क्षमता से सन्तुष्ट रहता है।

लेकिन, मां, जब हम यह सोचने की कोशिश करते हैं कि हम बलहीन हैं, तब भी कोई चीज यह मानती है कि हम शक्तिशाली हैं। तो?

हां, ठीक है, हां, ठीक है! हां, सच्चा और निष्कपट होना बहुत कठिन है...। इसीलिए प्रहार बढ़ते जाते हैं और कभी-कभी भयंकर हो जाते हैं, क्योंकि यही एकमात्र चीज है जो तुम्हारी मूढ़ता को तोड़ती है। यही विपदाओं का औचित्य है। जब तुम तीव्र पीड़ाजनक स्थिति में होते हो तभी, जब तुम ऐसी चीज के सामने हो जिसका तुम पर गहरा असर पड़ता है, तभी तुम्हारी मूढ़ता जरा-सी पिघलती है। लेकिन जैसा कि तुमने कहा, जब कोई चीज पिघलती है तो उस समय भी कोई छोटी-सी चीज तुम्हारे अन्दर जैसी-की-वैसी बनी रह जाती है। इसलिए व्यथा इतने लम्बे समय तक चलती है...

गहराइयों तक यह जानने के लिए कि हम कुछ भी **नहीं हैं**, कि हम **कुछ भी नहीं कर सकते**, कि हमारा **अस्तित्व ही नहीं है**, कि हम **हैं ही नहीं**, कि भागवत 'चेतना' और 'कृपा' के बिना कोई सत्ता ही नहीं है, कितने प्रहारों की जरूरत होती है। जिस क्षण तुम यह जान लेते हो, यह खत्म हो जाती है; सारी कठिनाइयां चली जाती हैं। तभी जब तुम इसे पूर्ण रूप से जान लो और कोई भी चीज इसका प्रतिरोध न करे... लेकिन उस मुहूर्त तक... और इसमें बहुत समय लगता है।

सारा प्रहार एक साथ क्यों नहीं आ जाता?

क्योंकि उससे तुम मर जाओगे। क्योंकि अगर प्रहार इतना सशक्त है कि

यह न भूलो कि हमारे योग में सफलता के लिए एक सुदृढ़ तथा स्वस्थ शरीर अनिवार्य है । अच्छे स्वास्थ्य में ही रूपान्तरण की ओर का मार्ग प्रशस्त होता है ।
CWMCV 5, p.147 **— श्रीमाँ**

तुम्हारा उपचार कर सके, तो वह बस, तुम्हें कुचल कर रख देगा, वह तुम्हारा मलीदा बना देगा। थोड़ा-थोड़ा करके, जरा-जरा करके, बहुत धीरे-धीरे बढ़ने से ही तुम जिन्दा बच सकते हो। स्वभावतः, यह निर्भर करता है आन्तरिक बल, आन्तरिक सच्चाई और प्रगति की क्षमता पर, अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता पर, और जैसा मैंने अभी कहा था, **न भूलने** पर। अगर तुम इतने भाग्यशाली हो कि भूलते नहीं, तो तुम तेजी से बढ़ सकते हो। तुम बहुत तेजी से जा सकते हो। और अगर साथ-ही-साथ तुम्हारे अन्दर वह आन्तरिक नैतिक बल है जो लाल तपे हुए लोहे को पानी डाल कर बुझाने की कोशिश नहीं करता, बल्कि उसे फोड़े की जड़ तक ले जाता है, तो इस हालत में चीजें भी बहुत तेजी से चलती हैं। लेकिन इतने मजबूत लोग अधिक नहीं होते। इसके विपरीत, वे तुरन्त यूं (*संकेत*), यूं करेंगे, यूं, ताकि छिपा सकें, अपने-आपको अपने से छिपा सकें। तुम अपने आगे कितने छोटे-छोटे सुन्दर-से बहाने बनाते हो, तुमने जो-जो मूर्खताएं की हैं उनके लिए एक-पर-एक कितने बहानों के ढेर लगाते जाते हो।

मधुर मां, क्या प्रहारों की संख्या लोगों पर निर्भर करती है?

हां, यह लोगों पर निर्भर करती है; जैसा कि मैंने कहा था, यह उनकी प्रगति की क्षमता पर, उनके बल और उनके प्रतिरोध पर निर्भर करती है। मैं ऐसे बहुत कम लोगों को जानती हूं जिन्हें प्रहारों की बिलकुल जरूरत नहीं होती।

CWM Vol 6, pp.322-24 — श्रीमाँ

अन्य कारण

हमलोग धरती के इतिहास में एक बहुत बड़े संक्रमण काल से गुजर रहे हैं । यद्यपि यह काल शाश्वत काल में मात्र एक क्षण है, फिर भी मानव जीवन के परिप्रेक्ष्य में यह एक लम्बा समय है । जड़ पदार्थ, नई अभिव्यक्ति के लिए अपने को तैयार करने की दृष्टि से, परिवर्तित हो रहा है । परन्तु

इसे साहसिक कहा जा सकता है क्योंकि पहली बार योग ने भौतिक जीवन का, इससे पलायन के बदले, इसके रूपान्तरण तथा दिव्यीकरण का लक्ष्य रखा है ।

CWMCV 14, p.34 — श्रीमाँ

मानव शरीर पर्याप्त रूप से नमनीय नहीं है और इसलिए अवरोध उत्पन्न करता है । यही कारण है कि शरीर में अबोधगम्य अव्यवस्थाओं तथा बीमारियों की संख्या दिन व दिन बढ़ती जा रही है तथा चिकित्सा विज्ञान के लिए समस्या बनती जा रही है ।

समाधान है उन दिव्य शक्तियों के साथ जो कार्यरत हैं एकता स्थापित करना तथा पूर्ण विश्वास और शान्ति के साथ ग्रहणशील बने रहना ।

CWMCV 16, p.421 — श्रीमाँ

रोग अवरोधक शक्ति में ह्रास

साधारण बाहरी दृष्टि से भी बहुत दिनों पूर्व से यह माना जा रहा है कि मनुष्य की रोग अवरोधक प्राणिक शक्ति में ह्रास हुआ है जिसका तात्कालिक कारण नैतिक है । प्राणिक शक्ति का ह्रास ही रोग का मूल कारण होता है । जब कोई व्यक्ति सन्तुलन की सामान्य अवस्था में सामान्य शारीरिक सामंजस्य बनाये रखता है तब शरीर में रोग के अवरोध की क्षमता बनी रहती है । इसके अन्दर रोग निवारक काफी मजबूत बना होता है । शरीर के भौतिक द्रव्य से सूक्ष्म स्पन्दन उत्पन्न होते हैं जिनमें रोग निवारण की यहाँ तक कि संक्रामक रोगों के निवारण की भी शक्ति होती है ।... किन्तु यदि किसी कारण से व्यक्ति इस सन्तुलन को खो देता है या विषाद, असन्तोष, नैतिक कारणों या अकारण क्लान्ति से दुर्बल हो जाता है तब शरीर की सामान्य अवरोधक शक्ति कम हो जाती है और वह रोगों के प्रति खुल जाता है ।

किन्तु योग का अभ्यास करनेवालों की बात दूसरी है । उनके असन्तुलन का कारण दूसरा होता है और उनमें रोग आन्तरिक कठिनाइयों की अभिव्यक्ति होते हैं जिन्हें उन्हें दूर करना पड़ता है ।

CWM Vol.9, p.120 — श्रीमाँ

अपने रोग से प्यार न करो और रोग तुम्हें छोड़ कर चला जायेगा ।
CWMCV 15, p.158 — श्रीमाँ

कष्ट कैसे सहन करें?

जब कभी गहरा शोक, झुलसा देनेवाला सन्देह या तीव्र वेदना तुम पर हावी हो जाये और तुम्हें निराश कर दे, तब अचंचलता और शान्ति पुनः प्राप्त करने का एक अचूक मार्ग है । हमारी सत्ता की गहराइयों में एक ज्योति चमकती है जो एक समान ही देदीप्यमान और निर्मल है, जो भगवान का एक जीवन्त और सचेतन अंश है, जो पदार्थों में प्राण का संचार करता, उसे पोषित और प्रकाशित करता है । वह उन लोगों के लिए एक शक्तिशाली एवं विश्वसनीय मार्गदर्शक है जो भगवान के विधान के प्रति सतर्क हैं । वह **उन** सब के लिए सान्त्वना तथा प्रेमपूर्ण सहिष्णुता से परिपूर्ण सहायक है जो उसे देखना, सुनना और उसका आदेश पालन करना चाहते हैं । उसके प्रति कोई भी सच्ची और स्थायी अभीप्सा व्यर्थ नहीं जा सकती । उसके प्रति कोई भी सुदृढ़ एवं सम्मानपूर्ण विश्वास को निराश नहीं किया जा सकता, कोई उम्मीद धोखा नहीं खाती ।...

मेरे हृदय न कष्ट झेला है और विलाप किया है । अत्यन्त गहरे शोक और तीव्र वेदना में लगभग डूब सा गया... । किन्तु मैंने तुझे पुकारा, हे दिव्य सान्त्वनादाता, मैंने हृदय की गहराई से तेरी प्रार्थना की । और तेरे देदीप्यमान प्रकाश की भव्यता मेरे समक्ष प्रकट हुई । और उसने मुझमें एक नये जीवन का संचार किया ।...

यह कैसी बात है कि तुम्हारे भक्त होने का जो दावा करते हैं, हे प्रभु, उनमें से कुछ तुम्हें निर्दय उत्पीड़क और कठोर निर्णायक समझते हैं जो तुम्हें या तुम्हारे संकल्प के द्वारा रचित पीड़ा को सहते हुए देखता है । नहीं, मैं अब समझती हूँ कि **ये कष्ट जड़तत्व की अपूर्णता से ही उत्पन्न होते हैं जो अपनी अव्यवस्था और अनगढ़ता के कारण तुम्हें व्यक्त करने के योग्य नहीं हैं और तू ही सबसे पहले इससे कष्ट झेलता है, विलाप करता है और अव्यवस्था को व्यवस्था में, कष्ट को आनन्द में, असंगति को सामंजस्य में परिवर्तित करने की उत्कट इच्छा से तू ही सबसे पहले संघर्ष और परिश्रम करता है ।**

प्रकृति सर्वतोमुखी चिकित्सक है ।
CWMCV 15, p.172 **— श्रीमाँ**

कष्ट ऐसी चीज नहीं है जो अनिवार्य हो, किन्तु जब हमारे पास आता है तब यह कितना सहायक हो सकता है !

प्रत्येक बार जब हमें ऐसा लगे कि हमारा हृदय टूक-टूक हो रहा है तब हमारे अन्दर गहराई में एक बन्द द्वार खुलता है और समृद्धतर गुप्त खजानों के साथ नये क्षितिज प्रकट होते हैं । इनका स्वर्णिम प्रवाह एक बार पुनः विनाश के कगार पर खड़े शरीर को एक नये और तीव्रतर प्राण का संचार कर देता है ।

और जब इन क्रमिक अवतरणों के द्वारा हम उस आवरण तक पहुँचते हैं जिसके हटते ही तू प्रकट होता है तब कौन वर्णन कर सकता है हे प्रभु ! जीवन की उस तीव्रता का जो सम्पूर्ण सत्ता को भेद देती है, प्रकाश की कान्ति का जो उसे आप्लावित कर देती है, प्रेम की भव्यता का जो सदा के लिए जीवन को बदल देती है ।

CWM Vol.2, pp.19-20 — श्रीमाँ

शरीर की मनोवैज्ञानिक स्थिति

यह शरीर, एक ओर, भौतिक आधार से निर्मित हुआ है, बल्कि भौतिक पदार्थ की अपेक्षा भौतिक अवस्थाओं से बना है और दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक स्थितियों के स्पन्दनों से बना है । शान्ति, समता, विश्वास, स्वास्थ्य में श्रद्धा, प्रशान्त विश्राम, प्रफुल्लता तथा प्रदीप्त प्रसन्नता से इन तत्वों का निर्माण होता है और इनसे शरीर को बल मिलता है ।

CWM Vol.3, p.89 — श्रीमाँ

हे दुर्भाग्य, तू धन्य है, क्योंकि तुम्हारे माध्यम से मैंने देखा है अपने प्रेमी का मुख ।

Thoughts and Aphorisms p. 35 — **श्रीअरविन्द**

पीड़ा

रहता जहाँ अज्ञान है, वेदना भी आयेगी निश्चित वहाँ
दुख तेरा, पुकार है अन्धकार की, प्रकाश के लिए ;
निश्चेतना से सर्वप्रथम जन्म हुआ पीड़ा का
जो तेरे शरीर का था एक मूक और मौलिक आधार ।
...

जीवन के वक्ष में जन्म लिया इसने अपने जुड़वां को छिपाये,
किन्तु आई पहले पीड़ा, तभी केवल आता आनन्द,
पीड़ा ने ही चलाया हल, वैश्व निद्रा की पहली पथरीली भूमि पर,
पीड़ा के ही द्वारा हुई यात्रा आरम्भ, आत्मा की, ढेले से,
पीड़ा द्वारा ही अवचेतन की गहराई में आई हरकत प्राण में ।
...

यदि हृदय को किया नहीं बाध्य कुछ चाहने और रोने के लिए
तब उसकी आत्मा नीचे रहती पड़ी सन्तुष्ट, आराम में
और कभी सोचती नहीं मानव बन मानव से आगे बढ़ना
और कभी सीखती नहीं सूर्य की ओर आरोहण करना ।
पीड़ा है हाथ प्रकृति का, मानव को महानता की मूर्ति गढ़ता हुआ,
पीड़ा है एक प्रेरित श्रमिक, स्वर्गिक क्रूरता से मारता है
छेनी एक अनिच्छुक ढाँचे पर ।

श्रीअरविन्द ('सावित्री' ४४३-४४४)

जबतक जीवन उस देव को कर लेगा नहीं प्राप्त
जीवन में कभी हो सकता नहीं दुःख समाप्त
'सावित्री' पृ. ४५३ — श्रीअरविन्द

भागवत कृपा क्या है ?

... यह (भागवत कृपा) करुणा भी नहीं है जो निष्पक्ष भाव से उन पर कार्य करती है जो इसके लिए प्रार्थना करते हैं । यह धर्मपरायण को नहीं चुनती और न पापी को त्यागती है ।... भागवत कृपा एक ऐसी शक्ति है जो समस्त नियम से ऊपर है, वैश्व विधान से भी ऊपर — क्योंकि सभी आध्यात्मिक ऋषियों ने विधान तथा कृपा के बीच अन्तर बताया है । फिर भी, कृपा अविवेकी नहीं है — केवल इसमें इसका अपना विवेक होता है जो चीजों को, व्यक्तियों को उचित समय तथा मौसम को, मन अथवा कोई अन्य सामान्य शक्ति की अपेक्षा एक दूसरी ही अन्तर्दृष्टि से देखता है । व्यक्ति में कृपा की अवस्था प्रायः घने आवरण के पीछे ऐसे साधनों द्वारा निर्मित की जाती है जो मन द्वारा गणनातीत है । और जब कृपा की अवस्था आती है तब कृपा स्वयं कार्य करती है ।

ये ही तीन शक्तियाँ हैं — १. कर्म का वैश्व विधान २. भागवत करुणा जो विधान के जालों द्वारा यथासम्भव अधिकतम लोगों को अवसर प्रदान करती है । ३. भागवत कृपा जो दूसरों की अपेक्षा अगण्य रूप से किन्तु अप्रतिरोध्य रूप से कार्य करती है ।

प्रश्न केवल यह है कि जीवन की सभी असंगतियों के पीछे क्या *कुछ चीज* है जो पुकार का प्रत्युत्तर दे सके और अपने आप को कठिनाइयों के बावजूद उद्घाटित कर सके जबतक यह भागवत कृपा की ज्योति के लिए तैयार न हो जाये; और वह *कुछ चीज* मानसिक तथा प्राणिक गति न हो बल्कि कुछ आन्तरिक हो जो अन्तश्चक्षु द्वारा दृष्टिगोचर हो सके । यदि यह है और जब यह सामने सक्रिय हो जाती है, तब करुणा कार्य कर सकती है, हालांकि कृपा की पूरी क्रिया निर्णायक निर्णय या परिवर्तन तक प्रतीक्षा कर सकती है; क्योंकि यह भावी मुहूर्त तक स्थगित की जा सकती है, क्योंकि सत्ता का कुछ अंश या तत्व अभी भी बीच में आ सकता है जो अभी ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं है ।

Integral Healing (compiled) 2012, p. 143 — श्रीअरविन्द

पूर्ण रूप से रोग निवारण, ताके रोग वापस नहीं लौटे, मानसिक, प्राणिक तथा शारीरिक चेतना और रोग लानेवाली शक्ति के प्रति मनोवैज्ञानिक प्रत्युत्तर की अवचेतना की पूर्ण शुद्धि पर निर्भर करता है... सब प्रकार के रोगों से पूर्ण प्रतिरक्षा, जिसके लिए हमारा योग प्रयासरत है, तभी सम्भव है जब चेतना के निम्न भाग में ऊपर की ज्योति से सम्पूर्ण और स्थायी ज्ञानोदय द्वारा रोग की मनोवैज्ञानिक जड़ें नष्ट हो जायें – अन्यथा यह नहीं हो सकता ।

Correspondence with Sri Aurobindo p.1054 — श्रीअरविन्द

सहनशक्ति की वृद्धि करने तथा हमें कुचल देनेवाली शक्ति का सामना करने हेतु एकाग्र होने के लिए बाध्य करके दुःख हमें एक गहरे सत्य की ओर वापस ले आता है...

रहस्य है अहंकार से ऊपर उठकर, इसकी कैद से बाहर निकल कर, अपने को भगवान के साथ युक्त कर देना, उनमें विलीन हो जाना और उनसे अलग करने वाली किसी भी चीज को अस्वीकार करना । तब, इस रहस्य की खोज कर लेने और अपनी सत्ता में इसे सिद्ध कर लेने के बाद दुःख अपना औचित्य खो देता है और कष्ट गायब हो जाता है । यह एक सर्वशक्तिमान उपचार है न केवल सत्ता के गहनतर भागों में, आत्मा में, आध्यात्मिक चेतना में, बल्कि प्राण में और शरीर में भी ।

ऐसा कोई रोग नहीं है, कोई अव्यवस्था नहीं है जो इसका प्रतिकार करे यदि रहस्य की खोज कर ली गई है और न केवल सत्ता के उच्चतर भागों में बल्कि शरीर के कोषाणुओं में भी इसका अभ्यास कर लिया गया है ।

A talk on 13 February, 1957 — श्रीमाँ

मूल्य : २५ रु.

ISBN No.:978-81-7060-354-2

ISBN 978-81-7060-354-2

9 788170 603542